

प्राक्कथन

ग्रामीण पुनर्निर्माण की सप लता एक बड़ी सीमा तक सप ल अभिकर्ता पर निर्भर करती है। ग्रामीण परिवेश में सत्ता सम्पन्न व्यक्ति तथा नेता, ग्रामीण पुनर्निर्माण महत्वपूर्ण अभिकर्ता है जो विकास-कार्यक्रमों को गति प्रदान करने में अहम् भूमिका निभाते हैं। ग्रामीण समाज के पुनर्निर्माण की दिशा में भारतीय शासन स्वतन्त्रता के पश्चात् निरन्तर प्रयासरत रहा है। पञ्चवर्षीय योजनाओं का महत्वपूर्ण लक्ष्य ग्रामीण विकास रहा है। इसके लिए समुदायिक विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करके समस्त गाँवों को उसकी परिधि में लाया गया जिससे गाँवों का सर्वांगीण विकास हो सके। मूल्यांकन अध्ययनों से पता चलता है कि चार शताब्दियों के प्रसास के बावजूद अपेक्षित विकास नहीं हो सका अथवा विकास का परिणाम प्रतिकूल रहा। गरीब की गरीबी बढ़ती गई तथा धनी धनवान होते गये। जो कार्यक्रम सार्वजनिक हित में चलाये गये थे, उनका लाभ कुछ लोगों तक सीमित होकर रह गया। इन परिणामों की सामाजिक पृष्ठभूमि में स्पष्टतः एक प्रमुख सीमित होकर रह गया। इन परिणामों की सामाजिक पृष्ठभूमि में स्पष्टतः एक प्रमुख कारण ग्रामीण शक्ति संरचना को स्वीकार किया जाता है। यह एक सामाजशास्त्रीय मान्यता है कि सामाजिक व्यवस्थाओं की गत्यात्मकता में नेतृत्व शक्ति का आधारभूत तथा केन्द्रीय स्थान है। "सामाज में परिवर्तन, संतुलन तथा असंतुलन की प्रक्रियाओं का विवरण तथा व्याख्या संरचना के सांचे में ही की जा सकती है।"

"शक्ति" का तात्पर्य किसी भी व्यक्ति अथवा समूह के उस दबाव से समझा जा सकता है जो अन्य व्यक्तियों अथवा समूहों पर पड़ता है। शक्ति का सम्बन्ध एक

सम्बन्धित भूमिका के निर्वाह में लिया जा सकता है।

सिद्धान्ततः, शक्ति का आधार परम्परा, कानून अथवा चमत्कार हो सकते हैं। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से शक्ति प्रस्थिति तथा भूमिका से सम्बन्धित होती है, जिसे अन्य व्यक्ति स्वीकार करते हैं। “शक्ति” को परिभाषित करते हुए हार्टन तथा हण्ट का कथन है, “शक्ति का अर्थ है दूसरों की क्रियाओं को नियन्त्रित करने की क्षमता।” अर्थात् कोई व्यक्ति दूसरों के व्यवहारों को जिस सीमा तक नियन्त्रित कर लेता है, वह उतना ही अधिक शक्तिशाली होता है। मैक्सवेबर भी शक्ति की व्याख्या इसी प्रकार करते हैं उनके अनुसार सामान्यतायें हम शक्ति को एक व्यक्ति अथवा अनेक व्यक्तियों द्वारा इच्छा को दूसरों पर क्रियान्वित करने अथवा दूसरे व्यक्ति अथवा अनेक व्यक्तियों द्वारा इच्छा को दूसरों पर क्रियान्वित करने अथवा दूसरे व्यक्तियों द्वारा विरोध करने पर भी उसे पूर्ण कर लेने की स्थिति को कहते हैं।”

समाज में शक्ति दो रूपों में देखी जा सकती है: एक “प्रभाव” के रूप में और दूसरी “सत्ता” के रूप में। दूसरों के व्यवहार तथा निर्णयों को बिना किसी के प्रभावित करने की क्षमता को हम “प्रभाव” कह सकते हैं। जबकि “सत्ता” से एक वैध शक्ति का बोध होता है। ऐसे जो व्यक्ति को एक विशेष पद पर आसीन होने के कारण होती है। सत्ता में आदेश का भाव निहित है जबकि प्रभाव को “आत्म-बोध” से सम्बद्ध किया जा सकता है।

भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात ग्रामीण सत्ता-संरचना तथा नेतृत्व में निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले आधारों में व्यापक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान यह अनुभव किया गया कि सत्ता-संरचना के परम्परागत आधार गाँवों में सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों को दृढ़वादी तथा शोषण आधारित बनाने के लिए उत्तरदायी है। अतः स्वतन्त्रता-प्राप्त होते ही नयी

रेवर्तन हेतु प्रयास किये। प्रथमतः, जनतान्त्रिक विकन्द्राकरण का दशा म प्रयास हुआ और गाँवों में पंचायतों का पुनर्गठन किया गया। तत्पश्चात्, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन करके, मध्यस्थों को समाप्त करते हुए, कृषकों को सीधे राज्य के अधिकार में ला दिया गया। उत्तर प्रदेश में, ये दोनों ही कार्य क्रमशः उत्तर प्रदेश पंचायत राज्य अधिनियम, 1948 तथा उ०प्र० जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, 1951 के माध्यम से किये गये।

ग्राम-पंचायतों के माध्यम से प्रथम बार गाँवों में शक्ति-संरचना के व्यवस्थित आधार का सूत्रपात हुआ। वयस्क मताधिकार, ग्रामीण व्यवस्था में स्त्रियों की सहभागिता, ग्राम पंचायत की कार्यवाही को लिखित स्वूप प्रदान करना तथा पंचायतों की राज्य की प्रशासनिक तथा न्यायिक व्यवस्थाओं से सम्बद्धता ऐसे महत्वपूर्ण कदम थे जिन्होंने ग्रामीण जीवन को नई दिशा दी। राजनीतिक सत्ता के हस्तान्तरण के साथ ही आर्थिक और सामाजिक सत्ता का भी हस्तान्तरण हुआ। आर्थिक सत्ता को सहकारिता के माध्यम से परिवर्तित करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार गाँवों में शक्ति-संरचना के परम्परागत आधारों में परिवर्तन वैधानिक रूप से गठित विकासोन्मुखी इकाईयों के माध्यम से लाया गया।

1951 में जमींदारी व्यवस्था उन्मूलन अधिनियम ने ग्रामीण लोकतन्त्रीकरण के मार्ग के अवरोधों को दूर करने में अहम् भूमिका निभाई। भूमि-सुधार कार्यक्रमों के अन्तर्गत, मध्यस्थों का उन्मूलन कर, कृषकों को सीधे राज्य से सम्बद्ध कर दिया गया जिससे उन्हें जमींदारों तथा मुखिया के शोषण से मुक्ति मिली। गाँव की सार्वजनिक, सम्पत्ति तालाब, चारागाह, परती भूमि आदि, जो पहले जमींदार के अधिकार में थी, गाँव की सामूहिक सम्पत्ति घोषित कर दी गयी तथा उसे ग्राम पंचायत के अधिकार-क्षेत्र में ला दिया गया। इस प्रकार, गाँवों में अधीनता तथा

स्था के स्थान पर समतावादी समाज की स्थापना का माग प्रशस्त हुआ जिससे सत्ता-संरचना के नवीन प्रतिमानों के प्रादुर्भाव की सम्भावनायें प्रबल हुईं।

गाँवों में अनुशासन की स्थापना के लिए प्रसिद्ध जातीय पंचायतों का अस्तित्व भी समाप्तप्राय है, क्योंकि इनमें निहित प्रशासनिक, न्यायिक एवं दण्डाधिकार गाँव पंचायतों तथा शासन द्वारा स्थापित न्यायालयों को हस्तान्तरित हो गये। जातीय व्यवस्थाओं पर कुठाराघात करने वाली नयी संवैधानिक स्थितियों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत में संविधान के अन्तर्गत जिस नवीन लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष एवं समता-आधारित सत्ता-संरचना को विकसित करने का प्रयास किया गया, उसमें आंशिक सफलता तो मिली किन्तु शक्ति-संरचना को प्रभावित करने वाले परम्परागत कारकों का अस्तित्व पूर्ववत् न सही, सूक्ष्मांश महत्व का अवश्य बना रहा। उल्लेखनीय है कि परम्परा का अन्त बहुत कठिन होता है। ग्रामीण शक्ति-संरचना के सम्बन्ध में भी वास्तविकता यह है कि उसमें कुछ बाह्य परिवर्तन तो हुए हैं परन्तु उसका आन्तरिक स्वरूप आज भी परम्परा के अधिक निकट है। यदि पहले उच्च जातियों का वर्चस्व जातीय श्रेष्ठता के आधार पर बना हुआ था तो अब वे चुनावों के माध्यम से अपना प्रभाव बताने में सफल हो रहे हैं। अशोक मेहता समिति ने पाया कि पंचायती राज संस्थाओं में सामाजिक व आर्थिक रूप से सुदृढ़ वर्गों का वर्चस्व बना हुआ है। समिति ने यह भी पाया कि भ्रष्टाचार, अक्षमता, राजनीतिक, हस्तक्षेप, शक्ति का केन्द्रीकरण आदि के कारण औसत ग्रामीण को पंचायती राज संस्थाओं का लाभ नहीं मिला है।